योग भक्ति दर्पण

इस पुस्तक में चौरासी लाख के दुःखों से दुःखी जीवों के लिए शांत परमानन्द पद पर पहुंचाने के सरल साधन बताए गए हैं, और अनुभवीजीवन के सांचे में ढालने वाली युक्तियें समझाई गई है ।



मुख्याधिष्ठाता श्री पं० रामलाल जी
योग साधन आश्रम ऋषिकेश ।

प्रथम वार २००० मूल्य ।-)

प्रस्तावना

संसार में मनुष्यों के दुःखों को दूर करने के लिए जितने भी प्रयोग सामने आते हैं उन सब का आदिस्रोत ईश्वरीय शक्तियां ही हैं। जब २ और जहां २ मनुष्य समाज कर्तव्यपथ से च्युत होकर दुःख-प्रवाह में बहते हैं तब २ वहां २ ऐसी महान् आत्माओं की देश को आवश्यकता हुआ करती है जिनकी ज्योतिर्मय दिव्य आध्यात्मिक शक्ति देश भर को दूषित मानवी जीवन के भाग्यचक्र की फिल्म को तोड़ कर दैवी बना दिया करती हैं। दैवी जीवन दैविक सम्पत्ति का केन्द्र है, स्वार्थी जीवन पैशाचिक राक्षसी संपत्ति का केन्द्र है। जब जिस देश का अकर्मण्य विषयी वायु मंडल होता है तब उस देश का विचार मंडल ईथर से स्वार्थी-आसुरी आत्मायें लेकर देश में अधम परिस्थिति उत्पन्न किया करता है। ऐसी अधम परिस्थिति जिस तत्त्व की कमी के कारण होती है उस तत्त्व को पूरा करने के लिए ईश्वरीय विभूति संपन्न मुक्त आत्माओं का अवतरण हुआ करता है। उन महान् आत्माओं के जीवन में मुख्य तीन शक्तियें विकसित हुआ करती हैं, इन ब्रह्मा विष्णु महेश की तीनों शक्तियां ही ईश्वरत्त्व का बोध कराया करती हैं। शुद्ध विचार मंडल मनुष्य समाज में उत्पन्न करना यह ब्राह्मी शक्ति का स्वरूप होता है, शुद्ध विचार धारा की ऐसी स्थापना करनी जिस से फिर दूषित विचार धारा उत्पन्न न हो सके, यह वैष्णवी शक्ति होती है। संसार के दूषित विचार मंडल को नाश करना यह शैवी शक्ति का स्वरूप होता है। गंभीर दृष्टि से देखा जाय तो हमारा देश जीवन शून्य होता चला जा रहा है। जीवन तत्त्व की धारा जो कि शारीरिक-मानसिक परिस्थिति को ठीक रखने में समर्थ हुआ करती है वह आज लुप्त हो रही है। जीवन तत्त्व आध्यात्मिक जीवन का स्रोत होता है। आध्यात्मिक जीवन की यदि परिभाषा को जाय तो विश्व प्रेम ही सिद्ध होती

है। विश्व-प्रेम विश्व-नाथ को मन-मन्दिर में स्थापित करने में समर्थ होकर सर्व ईश्वरीय-गुणों का आकर्षण करने लगता है। "विश्व-प्रेम की प्राप्ति का साधन "योग" है। जब तक भारत में योग के द्वारा वास्तविक शक्ति की उपासना होती रही, तब तक इस देश के बच्चे शक्तिशाली होते रहे। आज इस योग शक्ति के बिना देश सर्वथा मृतप्राय हो रहा है। देश के कलानिधि मायाधिपति भी इस से रूठे हुए हैं। योग सर्व विद्याओं, सब देवों के देवत्व परमतत्व का कारण होने से हमारी सारी उपासनायें योग द्वारा सर्वशक्तिसंपन्न कराया करती थीं। योग में पूर्वोक्त त्रियशक्तियों का विकाश नियमित रूप से स्वतः होने के कारण देश स्व–देश–स्व–आत्मा का देश अर्थात सारा विश्व इस देश को अपना देश मानता था। ५००० वर्ष से पूर्व महाभारत के समय में योग का विद्वत्समाज देशमें ईर्ष्यादि दोषों का केन्द्र समझ कर बनों में जा छिपा। परिणाम यह हुआ कि कि इस विद्या को सर्वथा गुप्त रखना समझ कर किसी ने किसी को न सिखाया; इस कारण यह विद्या लुप्त होगई, और देश सर्व प्रकार से क्षीण होकर आधुनिक अवस्था में परिणित हो गया है। देश के अधःपतन का कारण जब तक दूर न होगा, तब तक यह देश कभी भी अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य वृक्ष की जड़ को काटे और पत्तों को सींचे क्या वृक्ष हरा भरा हो सकता है? कदापि नहीं। जब तक अग्नि प्रज्वलित रहती है तब तक शेर भी समीप नहीं आ सकता किन्तु उसी अग्नि की राख होने पर कुत्ते भी उसपर लोटा करते हैं। आज योगग्नि के बिना भारतकी यही दशा है। इस का पुनरुत्थान भी योगद्वारा ही होगा। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि यह लक्ष्य भी श्री १०८ परमपूज्य पण्डित रामलाल जी योगीराज महाराज के मानसक्षेत्र में विकसित हो कर देश में त्रिदेवात्मक शक्ति संयुक्त नवीन परिस्थिति

उत्पन्न कर रहा है। आपने ऐसी अद्भुत और शास्त्रानुकूल योग प्रणाली का प्रकाश किया है कि जिस से दुर्बल, असाध्य रोगों से घिरे हुए व्यक्ति भी शीघ्र नीरोग होकर मानसिक एकाग्रता, प्रभु भक्ति, विश्व प्रेम के ध्येय पर पहुंच रहे हैं, दयासागर की अनंत शांत लहरें जिस समय साधक को साधन द्वारा प्राप्त होती हैं तो साधक शारीरिक मानसिक रोग दूर हो कर यम-नियमों का स्वतः ही पालन होने लगता है। आप के दरबार में वह असाध्य रोगी भी जिनको पाश्चात्य विज्ञान असाध्य निश्चत कर चुका है, यथा-यक्ष्मा, हिष्टीरियां, डायबिटीज आदि शीघ्र ही पूर्णतः आरोग्य हो जाते हैं। आप के साधनों में यह विशेष प्रभुता है कि रोगी नीरोग होकर ऐसी मानसिक स्थिति का अनुभव करता है कि मैं अब रोगी नहीं हो सकता।

मेरे जैसे कई शरीरों की प्रार्थना पर आप ने यह पुस्तिका लिखी है जिस को पढ़कर साधक को निश्चय हो जायगा कि मन की एकाग्रता आज कल भी किस प्रकार रोगी दुर्बलों को प्राप्त हो सकती है आप ने विज्ञान के अनुसार सिद्ध कर दिया है कि योग अब भी प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है और योग क्या है, भक्ति क्या है योग-भक्ति का स्वरूप इस विचित्रता से सिद्ध कर दिया है कि इसे पढ़कर भक्ति का स्वरूप सामने आ जाता है।

आप ने इस पुस्तक में योग विद्या के वे रहस्य खोले हैं जिन को पढ़कर योगके सब कठिन प्रश्न स्वयं ही हल हो जाते हैं। अतएव प्रार्थना है कि इस पुस्तक को पढ़कर वास्तविक योग भक्ति के स्वरूप बनने के लिए साधन प्राप्तकर मनुष्य जन्म को सार्थक कर देश को देव स्थान बना देवें जिससे संसार का कल्याण हो।

नानकचंद कपूर मैनेजर — स्टार इंडियन इंसोरैंस कम्पनी लाहौर।

दीनानाथ पाराशर — रेलवे मेल सर्विस लाहौर



अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ॥
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

चरणारविन्दं, गोविन्द, नमामि ।
गुरुदेव शरणं गुरुदेव नमामि ॥
भवो भाव्यभावं त्रयतापहारं ।
भवभयनाशं गुरुदेव नमामि ॥१॥
कल्याणरूपं आनंद कंदं ।
धारामृतं शिव गुरुदेव नमामि ॥२॥
अरेण्यं वरेण्यं सुरेशं रमेशं ।
त्रयदेवरूपं गुरुदेव नमामि ॥३॥
न जानामि जापं न जानामि ध्यानं ।

पाशूपत रूपं गुरुदेव नमामि ॥४॥
घटाकाशगुप्तं महाकाशरूपं ।
चिदाकाशव्यक्तं गुरुदेव नमामि ॥५॥
भूतेश प्रणम्यं अनन्तस्वरूपं ।
भक्तस्य त्राणं गुरुदेव नमामि ॥६॥
अकल्पं अनूपं तपान्तं दिगान्तं ।
अगो गोचराणां गुरुदेव नमामि ॥७॥
सिद्धि अगम्यं तव पादपद्मे ।
प्रबुद्धं शुभेशं गुरुदेव नमामि ॥८॥

आनंदकन्द ऋषियों के मन को मोहने वाले सर्व शक्तिमान् की आत्माओ ! क्या तुमने विचारा है हम कौन थे, क्या हो गए, कैसे हमारा उच्च मस्तक नीचा हो गया ।

क्या तुम जानते हो तुमने ही सब से पहले सर्वशक्तिमान् की उपासना करनी सीखी थी, तुमने ही समुद्र को बिन्दु में लय करना सीखा था तुमने ही ईश्वरीय दिव्य शक्तियों को

आकर्षण करना सीखा था तथा आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक उन्नति का उज्ज्वल ज्वलन्त जीवन बनाते हुए संसार को अनुभवी उपदेश दिया था कि सारा संसार व्यापक प्रभु स्वरूप है। सारा विश्व हमारा परिवार है। तुम मन्त्रद्रष्टा तत्त्वज्ञ हो कर देवों के देव इन्द्रदेव की समता रखते थे। शांति, क्षमा, दया उदारता माधुर्य जीवन देवों के ऐश्वर्य को मात करते थे।

अष्ट सिद्धि नव ऋद्धि जिस के द्वार की सेविका बन गई थीं। आज तुम वही हो जो सर्व प्रकार के रोगों से रोगी, दुःखों से दुःखी, पद-दलित परतंत्रता की पराकाष्ठा में पहुंच चुके हो। तुम्हारी प्रतिभा क्या थी जिस का तुम ने त्याग कर दुर्बलता, कायरता, विषयों के जाल में फंस कर ज्योतिर्मय जीवन को अन्धकार आच्छन्न करके पथ भ्रष्ट होते जा रहे हो।

क्या तुम ने विचारा है कि जो मन प्रभु के स्वरूप में अभेद हो रहा था, वह क्यों विषयी हठी, दुराग्रही होकर सर्वशक्तिमान् प्रभु से अलग हो रहा है।

अधःपतन का कारण।

यह मन जब से अनंत आनंदकन्द व्यापक प्रभु से पृथक् हुआ है तब से उस आनंद की प्राप्ति के लिए यत्नवान् हो रहा है। आनंद कन्द में स्थिर होने के लिए मनुष्य योनि प्राप्त की है और आंख-कान इस ने साधन बनाए। आंख से रूप, कान से नाम की प्राप्ति हुई, प्रत्येक नाम में रूप, रूप में नाम जानने की प्रवृत्ति हुई। जैसे कोई मनुष्य सुन्दर फल को देखता है फिर उस का नाम और गुण मालूम करता है उस का नाम और गुण मालूम करके उस को प्राप्त करके रस लेता हुआ उस फल से आनंद ग्रहण करने का साधन मन धारण करता

है अथवा किसी मधुर फल का नाम और गुण सुनता है उस को प्राप्त करता हुआ सुख प्राप्ति का साधन समझता है, किन्तु विषयों में यह गुण है वह आरंभ में आनन्द देते हैं जब कुछ क्षण सेवन करता है तो उसी विषय से उस को विरक्ति अर्थात् उस के दोष प्रतीत होने लगते हैं, उसी में उस को कष्ट प्रतीत होने लगते हैं। पहले आनंद प्राप्त होने से विषय में प्रेम हुआ, फिर उसी से द्वेष होने लगा। अब वह फिर कर्णेन्द्रिय से स्त्री की प्रसंशा वा गुण सुनता है उस को प्राप्त करने की इच्छा से तन्मय होकर उद्योग से प्राप्त करता है फिर उस को स्त्री का सुख भोग भी अच्छा नहीं लगता। पुत्र होता है, पुत्र के लालन-पालन में, उस के मधुर स्वर में, आनंदित होता है, परन्तु ज्यों ही वह उस के विरुद्ध चलता है, उस के ध्येय पर वाधा देता है त्यों ही उस से उस को भी दुःख पहुंचता है

इस रीति से नाम-रूप के संस्कार लाखों ही प्रति दिन अन्तःकरण के प्लेट पर पड़ रहे हैं उन में जिस २ को प्राप्त कर आनंद का अनुभव कर लेता है उन को संस्कार चक्र फिल्म के स्वरूप में बनाता चला जाता है, फिर एक नाम से अनेक नाम, इस प्रकार एक नाम-रूपात्मक सृष्टि बनती हुई संस्कार चक्र को बढ़ाती चली जाती है। और विषयानन्द के लाखों नाम-रूपों के केन्द्र मन ने प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त करके बना लिए हैं और प्रति क्षण बना रहा है।

मन का स्वभाव नकद धर्मी है, अर्थात् प्रत्यक्ष धर्मी है। मन को जिस काम से प्रत्यक्ष में फल प्राप्त होता है उस के लिये वही ध्येय स्वतः ही बन जाता है।

पाठक! अब आप समझ गए होंगे कि मन क्यों चंचल बना, क्यों राग द्वेषी बना; आशा तृष्णा इसमें क्यों पैदा हुई काम क्रोध लोभ मोह आदिकों का

समूह इस ने क्यों कर कैसे पैदा किया। जब मन को किसी विषय में प्रवृत्त होने पर आनंद और कुछ देर बाद दुःख होता है तब दुखित हो कर और किसी विषय में प्रवृत्त होता है वहां भी जब सुख पूरा न मिला तब अन्य किसी विषय में प्रवृत्त होता है; इस तरह रात दिन कृत्रिम आनन्द क्षेत्रों में इधर उधर बन्दर की नाईं भटक रहा है। पूर्ण शान्ति न मिलने से इसकी चांचल्यता बढ़ती ही चली जाती है यही कारण राग द्वेष का है। विषयवासना में आसक्त हो कर तीव्र इच्छा करता है, तब ही वह कामी होता है, जब उसमें कोई विघ्न करता है तो क्रोधी होता है। जब विषयों के साधन द्रव्यादिकों के एकत्र करने में तत्पर होता है तब वह लोभी होता है। जब विषयों को सेवन करते २ उन में आसक्त हो जाता है तब इस अवस्था को मोह कहते हैं। जब विषयों के साधन धन, पुत्र, वान्धवादि अथवा इन विषयों के प्राप्त

कराने वाली विद्या व शारीरिक बल प्राप्त करता है तो अभिमानी कहलाता है। जिस प्रकार एक बीज से एक वृक्ष, एक वृक्ष से हजारों बीज उत्पन्न होते हैं। फिर इन बीजों से हजारों वृक्ष उत्पन्न कर लाखों बीज व वृक्ष उत्पन्न होते रहते हैं इसी तरह हमारा अन्तःकरण क्षेत्र विषयवासनाओं का झाड़ीदार कांटों वाला बन बन गया है। इस में काम क्रोध लोभ, मोह, अहंकार रूपी डांकू छिपे हुए हैं जो प्रभु के पास जाने वाले पथिक को सहज ही में लूट लेते हैं। ज्यों २ नाम-रूप से वासनाओं का घना जंगल बनता जा रहा है त्यों २ ईर्षा, मत्सरता, कपट, क्रूरता, आलस्य, प्रमाद, आदि भयंकर डाकू बढ़ते जा रहे हैं। अविद्यादि का अन्धकार इस प्रकार घनघोर रूप में छाया हुआ है कि ज्ञान रूपी सूर्य के निकलने की आशा ही नहीं रहती है। न मार्ग दीखता है, न झाड़ियां बढ़ने देती हैं। जो बढ़ भी गया तो साधक को डाकुओं ने लूट लिया

अर्थात् साधक पद पद पर इन महा विघ्नों से घबरा कर थकित हो जाते हैं। फिर इन दूषित विचारों के आधार पर विषयी-बुद्धि से निश्चय कर के प्रभु की आनंदमयी सृष्टि को दुखःमयी बना लिया करते हैं। जैसे एक व्यक्ति के विचार काम-चेष्टा के हैं और उसी समय वह किसी स्त्री को देखकर उसे विषय भोग का केन्द्र समझ कर आनन्द प्राप्त करने की कल्पना करता है। उसकी प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न करते हुए अनेक शरीरों को नष्ट करने से नहीं रुकता, अनेक जीवों को दुःख देता है। परन्तु जिन जिन जीवों को दुःख देता है अथवा जिन जिन शरीरों को जब जब जैसा जैसा जहां जहां दुःख देता है, वेही जीव और शरीर तब तब वैसा वैसा वहां वहां दुःख देने के लिए नाना रूपों में संस्कार चक्र से प्रेरित होकर बदला लिया करते हैं यह है "प्रारब्ध तकदीर और भाग्य"।

इसी प्रकार शुभ विचारों की धाराएं भी काम किया करती हैं, और उनका परिणाम भी सुख मिलता है परन्तु यह सुख भी स्थिर नहीं होता, क्योंकि शुभ कर्म करते समय राजस, तामस और अहंकार छिपा रहता है इसी लिए सुख के बाद, दुःख और दुःख के बाद सुख मिला करता है। अब यह देखना है कि सुख दुःख का, दुःख सुख का कैसे कारण होता है। विषयों के सुखों को देने वाले नाम-रूप रजोगुणी स्वभाव होने से मनुष्य के संकल्प, शुभ कर्म, तप, यज्ञ दान आदि भी वही स्वभाव व प्रभाव रखते हैं। वही परिणाम दिखाते हैं अर्थात् प्रथम सुख, पीछे दुःख।

जैसे एक व्यक्ति अनाथों की धन से सहायता करता है परन्तु रजोगुणी प्रवृत्ति वश होकर यश इच्छा से वाध्य होकर चाहता है, कि संसार में मेरा नाम सर्व भक्तों से श्रेष्ठ प्रसिद्ध हो। उस की

भावना दान ग्रहण करने वाले के हृदय में प्रवृत्ति उत्पन्न करेगी कि दान दाता की प्रशंसा करे। चूंकि दान देने वाला रजोगुणी प्रवृत्ति में स्थित हैं उस प्रशंसा को सुन कर प्रसन्न होता है। अर्थात् अहंकार के खज़ाने को बढ़ाता है। इसी प्रकार तप-यज्ञ आदि कर्मों से अहंकार की वृद्धि होती है। अहंकार का खज़ाना जब बढ़ जाता है तब वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता, कोई सद्-विचार प्रगट भी करता है तो उसे तिरस्कृत करने में संकोच नहीं करता। परिणाम यह होता है बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जो शुभाशुभ विचारों की विवेचना करने में असमर्थ होती है। फिर वह मनुष्य तमोगुण में स्थित होकर दुष्ट कर्म करने में नहीं रुकता और दुष्ट कर्म करके राज दण्ड वा समाज भ्रष्ट होकर धन ऐश्वर्य से हीन होकर रोता है इसी प्रकार संस्कारचक्र के कर्मप्रवाह में जीव बहा

जाता है। उस की बुद्धि तमोगुण आच्छन्न होने से स्मृति नहीं रखती कि यह जो मैंने मकान से गिर कर चोट खाई है तो मैंने भी किसी समय किसी को धोखा देकर गिराया होगा इसी कारण मैं गिरा हूं। इस प्रकार से त्रितापों के के कारण जीव दुःखित हो रहा है। वह समझता है कि मैं धर्मात्मा हूं, मैं शुभ कर्म करता रहा हूं, ऐसा मनुष्य दूसरों को कटु वाणी बोलता हुआ भी हितोपदेष्टा बनने का दावा रखता है।

वह अत्याचार करता हुआ भी अत्याचारी अपने को नहीं समझता। क्रूरता करता हुआ भी अपने में वीरत्व का गुण अनुभव करता है। अर्थात् वह यही कहता है हमें नेकी की जगह बुराई मिलती है। दुनियां पापी है संसार झूठ प्रपंच का इच्छुक है हम सच्चे हैं हमारी बात कोई नहीं मानता, जिसे पीलिया (पाण्डु) रोग हो वह

सब कुछ पीला ही देखता है इसी तरह बुद्धि जब रजोगुणी तमाच्छन्न होती है तब मनुष्य की भी यही अवस्था होती है। यह जो दुःख मिल रहे हैं यह मेरी तकदीर खराब है, दैवेच्छा है। इस प्रकार रजोगुणी तमोगुणी सुख जो नाम-रूपों से मनुष्य ग्रहण करता हुआ व्यापक प्रभु के आनंदमय शांति साम्राज्य में दुःख का कारण समझता हुआ भी इसी आशा रूपी जाल में फंसा रहता है। ऐसी अवस्था प्रायः हम सब मानव जगत् में अनुभव कर रहे हैं।

सच्चे अखण्ड आनन्द की प्राप्ति का साधन।

यह पहले लिखा जा चुका है कि मन का स्वभाव प्रत्यक्ष धर्मी है यह वहीं लग सकता है जहां प्रत्यक्ष में रस मिले तब ही यह उस पर विश्वास करके दृढ़ होता है योगियों ने भी ऐसी

ही युक्ति निकाली जिस से यह प्रत्यक्ष में ही परमानन्द प्राप्त कर सके। सर्व शक्तिमान् निराकार व्यापक प्रभु के अनन्त आनन्द की प्रतीति हो जाय। भारतीय उच्च आत्माओं ने इसे अच्छी तरह समझा था क्योंकि देव और मुनियों के मन को मोहने वाले प्रभु को देखते २ संसार सागर में कमल के समान रहना अच्छी तरह सीख चुके थे।

"विषस्य विषमौषधम्"* के सिद्धान्त से से उन्हों ने नाम-रूप के संस्कार चक्र को नाम-रूप से ही नष्ट करना निश्चित किया था। जिस नाम-रूप से मन विषयों की ओर प्रवृत्त हो रहा था और अधोगति को प्राप्त हो शोकसागर में गोते लगाता था, उन्होंने नाम-रूप से ही परमानन्द में मग्न करने की युक्ति निकाली—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

भगवद्गीता अ० ८ श्लो० १२

---

* विष ही विष को नष्ट करता है।

अर्थात् ॐ अक्षर ब्रह्म को याद करते हुए और भगवान् कृष्ण के स्वरूप का चिन्तन करते हुए संस्कार चक्र सहज ही में नष्ट हो जाय संसार में मन ही दुःख सुख में फंस बन्धमोक्ष का कारण होता है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

अर्थात् मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है । मन बन्धन का कारण कैसे हुआ यह तो आप समझ ही गए होंगे किन्तु मोक्ष का कारण कैसे और किस प्रकार होता है यह समझना शेष है ।

मोक्ष तत्व ।

जिस से सृष्टि का विकाश हुआ, जिस से सब नाम उत्पन्न हुए जिस से सर्व शब्द व नाद ध्वनि उत्पन्न हुई जिस के आधार पर वेद शास्त्रों का निर्माण हुआ जिस के प्रकाश से सूर्य चन्द्र

आदि नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई जिस अक्षर ब्रह्म ओंकार की स्तुति उपनिषत्कार करते हैं—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

कठोपनिषद् द्वितीयावल्ली

अर्थ—यही अक्षर अपर ब्रह्म सगुण और परब्रह्म निर्गुण है इसी अक्षर (अविनाशी ब्रह्म ॐ) जानने से ब्रह्म लोक को प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है यही उत्तम आधार है यही उत्तम तारक है इस को ही जानने से ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

जिस एक शब्द का कम्पन सारे संसार में कम्पन करता हुआ रचना उत्पत्ति प्रलय कर रहा है। जिस का प्रकाश सर्व रूपों का कारण हो रहा है, जिस एक बिन्दु में अनन्त आनन्द

के समुद्र की लहरें उठ रही हैं, जिस एक बीज में अनन्त आनन्द; अहिंसा; शांति; दया; क्षमा; सत्य; धैर्य के सद्गुणों की वाटिका लग रही है जिस में शीतल सुगन्ध; शुद्ध ऋतंभरा* बुद्धि रूपी पवन चला करता है; जिस में प्रवेश करके शुद्ध बुद्ध होता हुआ शान्त सागर में लय हो जाता है। अमृत का समुद्र भंडार जिस में छिपा हुआ है उस नाम-रूप के विषयों का सेवन कराकर अशांत दुःख सागर में डुबाने वाले; क्षणिक सुखों का लालच देने वाले कान और नेत्रों में प्रवेश कराते हुए आनंदमय कराना निश्चय किया।

सद्गुरु की शक्ति संचार का रहस्य।

जिस समय संसार से दुःखित होकर आनन्द का जिज्ञासु किसी सद्गुरु योगी के चरणों

---

* दिव्य स्वरूप के साक्षात् होने पर जो बुद्धि प्राप्त होती है उस बुद्धि का नाम ऋतम्भरा है।

में पहुंचता है तो मंत्र द्रष्टा दिव्य दृष्टि के द्रष्टा गुरु उस के पूर्वजन्मार्जित अन्तःकरण के संस्कार चक्र को देखकर निश्चित करते हैं कि यह पिछले जन्मों में किस स्वरूप का ध्यान और मंत्र का जाप करता रहा है* इसके हृदय-मानस क्षेत्र-में किस प्रकार के विचारों का संग्रह है; यदि एक शरीर भगवान् राम के स्वरूप में प्रेम रखता है उन को भगवान् मानता हुआ अपने हृदय मन्दिर में बैठाकर उन के सद्गुणों को आकर्षित करके भगवत् प्राप्ति का अधिकारी है तो उसका ही ध्यान उसी मंत्र में स्वशक्ति से मंत्रित करता है। यदि कोई भक्त निराकार सर्व-व्यापक निर्गुण तत्व का जिज्ञासु है तो वह ओंकार मन्त्र से विश्व व्यापक प्रभु के प्रकाश स्वरूप में साधक के मन को मंत्रित कर देता है

---

* मनुष्य जन्म तब ही मिलता है जब पाप पुण्य की समानता होती है।

निश्चय रखिए गुरु वही है जो मन का मंत्रवत् कर दे, ध्यान से ध्याता को ध्येय में लय करादे।

मनुष्य का मन चंचल इसी लिए हुआ है कि उसे परमानन्द की प्राप्ति नहीं हुई, यदि उस को परमानन्द की झलक दीख पड़े तो उस के चंचलता आदि सब दोष स्वयं नष्ट हो जाएंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार गुरुजन साधक के मानस क्षेत्र शुद्ध विचार मंडल के अनुरूप नाम और रूप के विषयी मन को आनन्द सागर में ले जाने वाले नाम और रूप को देते हैं। किन्तु संसार में विषयात्मक नाम-रूप की वस्तुएं शारीरिक उद्योग से प्राप्त हो जाती हैं उस को सत्य मान कर संस्कार चक्र में बांध लेता है किन्तु देखना यह है कि मन इन्द्रिय से परे निराकार निरंजन प्रभु प्रत्यक्ष में कैसे मिल सकते हैं।

मनुष्य के अन्दर प्रभु सर्वशक्तियों का भंडार

खोले हुए बैठे हैं। जिस ने प्रभु के अनन्त आनन्द भंडार की कुंजी प्राप्त करली है वह संसार में सर्व शक्ति संपन्न होता हुआ मुक्त जीवन हो जाता है। सन्त भीखादास कहते हैं—

भीखा भूखा कोउ नहीं, सब की गठड़ी लाल।
गांठ खोलन नहीं जानते, इस विधि भए कंगाल॥

आनन्द भंडार की कुंजी।

मनुष्य में प्रभु ने दो शक्तिएं दी हैं जो इन दोनों का मिलाना जान लेते हैं; वही इलैक्टिक सिटी (ELECTRICITY) तथा सर्व शक्ति स्वरूप होकर सर्व शक्तिमान् में मिल जाते हैं। जिस प्रकार बिजली के दो तार मिल कर बिजली की कौरंट उत्पन्न कर देते हैं इसी प्रकार मनुष्य में भी हैं इन दोनों को मिलाने से विद्युत् और सूर्य को प्रकाश देने वाला सूर्यों का सूर्य प्रकट हो जाता है। मनुष्य में मन और प्राण दो शक्तिएं हैं। मन और प्राण को एकत्र कर देने से

आनन्द सागर की लहरें उत्पन्न होती हैं। क्योंकि ब्रह्माण्ड और शरीर में एक ही नियम काम कर रहा है।

विषयों में भी आनन्द की उत्पत्ति इसी तरह हुआ करती है। मन प्रत्यक्ष में जिन विषयों से आनन्द का अनुभव करता है उसका भी यही मुख्य कारण है। जब तक मन के साथ प्राण रहते हैं तब तक ही आनंद का अनुभव करता है। जब मन के साथ प्राण नहीं रहते तब विषयों से आनन्द न मिलकर दुःख ही मिलता है। जैसे एक आदमी का मन रसगुल्ले के खाने को करता है और खाता भी है उसे आनन्द भी आता है क्योंकि प्राण शक्ति का सहयोग रसना जिह्वा द्वारा मन से हो रहा है। जब पेट भर जाता है अर्थात् प्राण शक्ति मन से पृथक् होती है तो मन फिर कितना ही चाहे वही रसगुल्ले अच्छे नहीं लगते। इसी प्रकार सारे विषयों में

प्राण तत्व अल्प होता है इस लिए प्राण शक्ति तृप्त नहीं होती किन्तु ईश्वरीय नाम रूप में प्राण शक्ति का अनंत भंडार छिपा हुआ है इस लिये मन प्राण शक्ति के आश्रय होकर नाम रूप के प्रपंच को त्याग कर ईश्वरीय दिव्य नाम रूप में अभेद होकर मुक्त हो जाता है। व्यापक प्रकाशी प्रभु नाम रूप में प्राण मन को एक कर देने से मथन होकर साक्षात् होते हैं। इस उच्च अवस्था का महत्त्व ऋषियों ने सब से बढ़कर कहा है।

ब्रह्मानन्दं रसं पीत्वा यस्योन्त्तयोगिनः।
इन्द्रोऽपि रङ्कवद्भाति नृपकीटस्य का कथा॥

अर्थात् ब्रह्मानंद रस को पीने वाला उन्मत्त योगी के एश्वर्य की समता यदि इन्द्र से भी की जाय तो इन्द्र रंक के समान प्रतीत होता है विचारे नृप जैसे कीड़ों की तो कथा ही क्या है?

इस आनन्द को जिस ने भी प्राप्त किया

वह चक्रवर्ती राज्य को त्याग कर नाम-रूप के विषयों को तुच्छ मानकर परमानन्द प्रभु के ऐश्वर्य में मग्न होकर विषयों को काक विष्ठावत् त्याग देता है। जिस के कारण सब कुकर्म नष्ट हो जाते हैं और साधक परमानन्द सागर में लय होने लगता है।

मनुष्य के मन में वह अद्‌भुत शक्तियों का भंडार है जिस की कल्पना वह स्वयं भी नहीं कर सकता। परन्तु प्राण शक्ति से पृथक् होकर प्रभु के दरबार में यह पहुंचने में असमर्थ है। मन पिंगला सवार है प्राण सवारी है, प्राण शक्ति है, मन शिव है! मन जब प्राणों में स्थित हो जाता है तब आनंद केन्द्र सर्व शक्ति भंडार को खोलने में समर्थ होता है। मन विचारों का स्वरूप है प्राण इस का तेज है। स्वरूप में तेज नहीं तो रूप जड़ के समान है। इसी लिए आप के अधिकांश विचार प्राण शक्ति के बिना

केवल कल्पना क्षेत्र में ही गूंजते रहते हैं, उन में सफलता नहीं होती।

शक्ति प्राणों के आश्रय है अर्थात् प्राण ही शक्ति को आकर्षित करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य की इच्छित प्राण शक्ति श्वासों से प्राणों को ग्रहण करती है उसी प्रकार प्राणों के प्राण को भी आकर्षित कर सकती है। जैसे विचारों का मनन होगा। वैसी ही इच्छित प्राण शक्ति उत्पन्न होगी। यदि आप के विचार विषय वासनाओं के हैं तो शक्ति भी वैसी ही होगी। जिन के विचार दुर्बल संशय युक्त होते हैं वहां इच्छित प्राण शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती जिन के विचार प्रबल संशय रहित होते हैं वहां इच्छित प्राण शक्ति प्रबल तीव्र होती है। विचारों की प्रबलता विश्वास से होती है। विश्वास प्रत्यक्ष अनुभव से दृढ़ होता है। याद रक्खो! मनुष्य के दृढ़ विचार और तीव्र

इच्छाओं में इतना बल है कि आकाश (Eather) में इच्छित वस्तु को शीघ्र ही आकर्षित कर लेती हैं। यह आकाश (ईथर) ही सारे विचारों की लहरों को इच्छित प्राण शक्ति द्वारा इच्छित केन्द्र पर ले जाता है। इस विश्व ब्रह्मांड में सर्व शक्तियों के केन्द्र हैं जिस समय जैसी बलवती विचार शक्ति जिस प्रकार के केन्द्र की ओर इच्छित प्राण शक्ति से प्रवाहित होती है ठीक उसी समय वैसी बलवती विचार शक्ति के केन्द्र पर पहुंच कर संबन्ध स्थापित कर लेती है। संबन्ध की स्थापना ही "उपासना" है अर्थात् उस शक्ति केन्द्र से शक्ति आकर्षण कर मन को शक्तिवान् बना कर फिर उस से अधिक शक्ति शाली बनता हुआ तीव्र शक्ति आकर्षण करने में समर्थ होता है। जिस प्रकार एक दरिद्र १) एक रुपए से व्यापार करता है तो २) दो रुपए प्राप्त होते, हैं दो से चारइस प्रकार वणिक् किसी

समय राजा हो जाता है । ठीक इसी तरह साधक ज्यों २ विचारों को इच्छित प्राण शक्ति से शक्ति केन्द्र में आकर्षण करने लगता है त्यों त्यों मन दिव्य बलवान् होता हुआ देवत्व को प्राप्त होता है । देवत्व आते ही आसुरी भाव नष्ट होते हैं ज्यों २ आसुरी भाव नष्ट होते हैं त्यों २ मन को देवत्व प्राप्ति में सफलता होती है इस का परिणाम यह होता है कि यह मन एक दिन देवों के देव महादेव की शक्तियों को प्राप्त हो सकता है । जैसे कोई धातु अग्नि में पड़ कर अग्नि स्वरूप हो जाती है ।

गुरू की शक्ति संचार का स्वरूप ।

जिस समय गुरु साधक को ईश्वरीय शक्तियों के किसी स्वरूप में और उसी नाम में लगाता है तो कर्णेन्द्रिय नाम में दृष्टि उस के स्वरूप में लग कर वृत्ति अन्तर्मुखी होती है, परन्तु नाम

का उच्चारण जिह्वा से नहीं, किन्तु शब्द के रूप में अर्थात् ध्वन्यात्मक नाम की श्वासों में गुरु-जन प्रत्यक्ष कराते हैं साथ ही स्वशक्ति देते हैं जिस के प्रभाव से नाम में रूप की प्रतीती होती हैं और स्वरूप में देवत्व गुरु की संकल्प शक्ति से प्रगट होता है। देवत्व के प्रगट होने से यह दिव्य स्वरूप ईश्वरीय शक्तियों का सागर है। नाम में रूपसे ईश्वरीय विचारों का आकर्षण होता है प्राण शक्ति श्वासों से ईश्वरीय नाम रूप के विचारों को ब्रह्मांड के ईश्वरीय केन्द्रों पर पहुंच कर सम्बन्ध की स्थापना करती है। ईश्वरीय विचारों का मंडल ध्येय स्वरूप से अन्दर स्थित होता है, अर्थात् वारंवार मन एक से विचारों को श्वासों में पिरो कर आकर्षण करना प्रारम्भ करता है तो ईश्वरीय शक्ति की झलक अनुभव में आने लगती है प्रत्यक्ष में आनन्द की प्राप्ति से दृढ़ विश्वास होता है दृढ़ विश्वास

से विचार शक्ति अद्भुत बल शाली होकर इच्छित प्राण शक्ति को बलवती बनाती है उस इच्छित प्राण शक्ति को श्वासों में होने वाले नाम रूप से देवत्व ग्रहण करने में साधक शीघ्र ही सफल होता है। तथा मन की एकाग्रता, आनन्द कन्द प्रभु की शांत आभा से मन शांत होने लगता है यहां नाम की ध्वनि जो श्वासों में स्वतः हो रही है और जब ध्वनि युक्त श्वासों में जब ईश्वरीय विचारों की तीव्र आकांक्षा होती है तो श्वांस के आकर्षण के साथ दिव्य नाम रूप में छिपे हुए विचार भी आने लगते हैं वह विचार जैसे २ आते हैं त्यों २ अपना स्थान बनाते हुए विरुद्ध विचारों को निकालते चले जाते हैं अतः शुद्ध विचारों का आकर्षण श्वासों के आवागमन के साथ २ होता है और दूषित विचारा का नाश होना आरंभ हो जाता है "इसी को देवासुर संग्राम कहते हैं" अब

विषयों में प्रवृत्त करने वाला नाम रूप का दर्वाजा बन्द हो जाता है बल्कि अन्दर के चोर डाकू भी निकलने लगते हैं।

सतोगुणी विचारों की प्रबलता होने से रजोगुणी तमोगुणी विचार नाश होकर साधक सतोगुणी होना आरंभ होता है। सत्त्व स्वभाव से मन बुद्धि अहंकार भी सतोगुणी होने लगते हैं। फिर साधक के मन-वचन-कर्म सब ही शुद्ध पवित्र होने लगते हैं अब साधक तप दान आदि जो भी कर्म करता है वह निष्काम होता है, क्योंकि साधक सत्व स्थित बुद्धि के आश्रय कर्म करता हुआ निष्काम-अकर्ता होता है। भगवान् सत्व स्थित बुद्धि के लक्षण (गीता १८-३०) में इस प्रकार वर्णन करते हैं।

प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षञ्च यो वेत्ति बुद्धि सा पार्थ सात्विका॥

अर्थ—हे पार्थ ! प्रवृत्ति मार्ग तथा

निवृत्ति मार्ग को, कर्तव्य-अकर्तव्य को, भय-अभय को बन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्त्व से जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है, अर्थात् सात्विकी बुद्धि सात्विकी स्वभाव बनाने में समर्थ होती है । सात्विकी स्वभाव निष्काम कर्म से बन्धन काटने में समर्थ होते हैं । अब यह देखना है कि निष्काम कर्म कैसे होते हैं और क्योंकर बन्धनों को मुक्त करने में कारण होते हैं ? जिस समय साधक श्वासों में प्राणों के प्राण का आवागमन होता देखता है ता इस संसार की उत्पत्ति रचना प्रलय भी श्वासों से होती हुई प्रतीत होने लग जाती है। जैसे २ अपने अन्दर के दूषित विचारों का नाश होता हुआ देखता है वैसे २ ब्रह्माण्ड में भी इसी प्रकार की क्रिया होती हुई देखता है। साधक को प्रकाशों के प्रकाशक गुरु की ज्ञान रूपी सूर्य की किरणों देह में स्थित होने पर शारीरिक, मानसिक

क्षेत्र की स्वामिनी दीखती है तब वह अकर्ता होता है। अब साधक का मन, मन नहीं रहा। साधक के प्राण, प्राण नहीं रहे किन्तु देह-बिन्दु के मन-प्राण ब्रह्माण्ड के मन-प्राण हो जाते हैं तब ही साधक की स्थिति ऐसी होती है, यथा—

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

अर्थात् सारा ब्रह्मांड साधक का परिवार हो जाता है साधक सूर्य में सूर्यवत् होकर प्रकाश करता है। उस की शांत किरणें सारे परिवार को, सारे नगर को, सर्व देशों को आनंद मय बना देती हैं ऐसी अवस्था जब प्राप्त होती है तब ही साधक को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है साथ ही 'परा पश्यन्ति' वाणी सुनाई देती है यह अवस्था बुद्धि को आत्मतत्त्व में स्थित होने से प्राप्त होती है, ऐसी अवस्था में पहुंचा हुआ साधक सर्व शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है, सर्व संशय नाश हो जाते हैं, सब गुप्त विद्याएं प्रगट होती

हैं, सर्व सिद्धिएं दासी हो जाती हैं। ज्यों २ साधक को अधिक आनन्द होता है त्यों २ प्यारे प्रभु से मिलने की आकांक्षा अधिक होती जाती है। प्यास के बढ़ने से साधक का मन देवत्व अवस्था में आजाता है तब ही सिद्ध पुरुष मुक्तात्माओं के के अर्थात् भगवत् शक्ति स्वरूप भगवान् के ही दर्शन होते हैं साधक कृतकृत्य होता है मुक्तात्मा देव गण प्रसन्न होकर (वरं वूहि) साधक को वर देने के लिए कहते हैं और स्वशक्ति देते हैं जिससे साधक निर्विघ्न होकर हर समय आनंद म मग्न रहता है। सब देवता उस की स्तुति करते हैं सर्व शक्तिएं उसे प्राप्त होती हैं। परन्तु वह सर्व शक्तियों का कर्ता, जो प्रकाशों का प्रकाश है नाम-रूप का कर्ता है उस में लीन रहता है साधक की ऐसी उच्च अवस्था का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमुख से गीता अध्याय ६ श्लोक ३० में करते हैं—

योो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न णश्यति ॥

अर्थ—जो पुरुष सब भूतों में सब के आत्म-स्वरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उस के लिए मैं अदृश्य नहीं हूं क्योंकि वह मुझ में एकीभाव से स्थित है ।

स्वतः प्राण निरोध अवस्था ।

साधक जिस समय प्रकाशस्वरूप सूर्यों के सूर्य को अपने अन्दर प्राणों में स्थित करके अन्दर लाता है तो उस समय अपने स्वरूप को लय करके ध्येय रूप में होता है और उस ध्येय रूप प्रभु में सर्व भूतों को, सर्व देवताओं को और सारी सृष्टि को अपने अन्दर देखता है । जब श्वास बाहर जाते हैं तो ब्रह्मांड में उसके प्रकाश-मयी श्वास लय होते दीखते हैं श्वासों के साथ

प्रकाशमय व्यापक प्रभु भी संसार में ब्रह्मांड की रचना उत्पत्ति प्रलय में, प्रकृति के परमाणुओं में दीखते हैं ऐसी अवस्था में श्वासों की गति बढ़ जाया करती है, श्वास लम्बे और तीव्र एक से होते हैं, क्योंकि जो विचार-मण्डल श्वासों में प्रकाशों के प्रकाशक का स्थित है। वह ऐसी धारणा के स्वरूप में स्थित होता है जिससे साधक को प्रत्येक श्वास के साथ आनन्द-स्वरूप श्वास की स्थिति होती है, जब आनन्दमय श्वास अन्दर आते हैं तब पूरक होता है जब साधक प्राणों के प्राण-रूप प्रभु को हृदय-क्षेत्र में बैठाता है। तब कुम्भक होता है। जब प्राणमय श्वास वाह्य ब्रह्मांड में लय होते हैं, तब रेचक होता है। इस प्रकार प्रणव मन्त्र द्वारा स्वतः ही प्राणायाम होता है। इस प्राणायाम के विषय में उपनिषदों में कहा है—

मनो यत्र लीयते प्राणास्तत्र लीयते ।
यत्र प्राणः लीयते तत्र मनो लीयते ॥

अर्थात् जहां मन लीन हो जाता है वहां प्राण लीन हो जाते है । जहां प्राण लीन हो जाते हैं वहां मन लीन हो जाता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (अ० २ श्लो० ६) में मन की एकाग्रता की कसोटी का स्वरूप इस प्रकार दिखाया है—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राभियुज्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥

अर्थात्—अग्नि का जहां पर मथन होगा, वायु जहां पर रुकेगी, जहां अमृत की प्राप्ति होगी वहां ही मन की एकाग्रता होगी ।

मन, प्राण और नाम-रूप की एकता का सिद्धान्त ही निश्चय बोध कराता है कि यह तीनों लक्ष्य इस साधन से सहज ही स्वतः प्राप्त होते हैं । इस प्रकार प्राणों का निरोध स्वतः ही हो जाता है ।

अमृत कैसे प्राप्त होता है।

अमृत क्या वस्तु है ? जिस से मृत्यु न हो, वह अमृत है। पांच तत्त्व का भौतिक शरीर वाल; युवा, वृद्ध हो कर नाश होना यह मृत्यु है, पांच तत्त्वों का आगमन जब जीवनी तत्त्वों की विचार धारा से जीवन रूप होकर आता है तो शरीर में अद्‌भुत परिवर्तन होना आरंभ हो जाता है जो शारीरिक परमाणु सेल (Cell) बढ़ने घटने वाले होते हैं वही जन्म मृत्यु का कारण उपस्थित कराते हैं, जब अस्थिर परमाणु नित्य स्थिर रूप से आत्मस्वरूप में लय होना सीख जाते हैं तब वह भी नित्य स्थिर अचल रूप में धारण करके अमृत होते हैं। शरीर के अमृत परमाणु अमृत शरीर की स्थापना कर देते हैं। अब यह जानना है कि अमृत कैसे प्राप्त होता है जब साधक श्वासों में अजन्मा,

नित्य स्थिर परमानंद के स्वरूप को आकर्षण करता है तो मानसिक दोषों के साथ ही साथ शारीरिक दूषित दुर्बल परमाणु नाश होते हैं और चैतन्य अमृत दिव्य परमाणु शरीर में वास करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि योगी का शरीर अमृतमय हो जाता है। ऐसी अवस्था में साधक के मल—विक्षेप-आवरण दूर हाकर साधक को "शुद्धोऽस्मि" का बोध होता है, इसी लिए योग दर्शन की टीका करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं—

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा,
स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः।
संसारबीज क्षयमीक्षमाणः,
स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी ॥

(योग० पा० २ सू० ३२)

अर्थात् मन को प्राणों में स्थित सिद्ध किए

हुए प्रणव की साधना सोते, बैठते, उठते, चलते, फिरते करता हुआ संसार बीजों को अर्थात् सब संस्कार चक्र को नाश करके साधक अमृत भोगता है।

अग्नि का मथन।

जिस समय साधक प्राणों का आकर्षण एक सी स्थिति से पूर्वोक्त धारणा-ध्यान ध्येय में करता है तब स्वतः ही प्राण वायु नाभि तक संचार करती है तब समान वायु का सम्बन्ध हो जाता है, फिर प्राण और समान वायु का संबंध हो जाता है। प्राण और समान वायु के मिलते ही नाभि चक्र में प्राणों का धक्का लगने से अग्नि का मथन होना प्रारंभ होता है। अग्नि का मथन होने से प्रकाशों का प्रकाश प्रकाशित होकर मन की एकाग्रता का हेतु होता है। जिस प्रकार वाह्य संसार सूर्य से स्थित है इसी प्रकार

मनुष्य शरीर भी नाभि चक्र से स्थित है इस लिए ये नाभि चक्र ही शरीर रूप हो रहा है उपनिषत्कार कहते हैं।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० १ श्लो० १४

अर्थ—स्वदेह को लकड़ी बना कर प्रणव मंत्र को भी देहवत् दूसरी लकड़ी बनावे । ऊपर नीचे लकड़ी मथने से जैसे अग्नि प्रकट होती है ऐसे ही जब नाभि देह में प्रणव मंत्र का श्वासों द्वारा घर्षण होता है तब ब्रह्म का साक्षात् होता है । तब ही मन की एकाग्रता होती है । इस प्रकार से निश्चित होता है कि इस सहजयोग में सर्व प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान स्वतः ही स्थित होते हैं । इस में साधक हर समय साध्य-साधन रूप होकर असार संसार को सार रूप में ग्रहण करता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है ।

मुक्त जीवन की प्राप्ति।

अब नाम रूप के विषयों का बन भस्म हो गया है साधक के विरोधी, हिंसक डाकू काम, क्रोध लोभ, मोह, अहंकार सच्चे मित्र, सहायक बन गए हैं मन जिन काम्य पदार्थों की लालसा में रत रहकर चंचल दुःखित होता हुआ भटकता फिरता था अब वह अनंत आनंद भंडार के भंडारी परमानंद स्वरूप में निमग्न है। जिन काम्य पदार्थों के मिलने से संसारी जीवों पर क्रोध करता था; अब वह अपने मन इन्द्रियों पर क्रोध करके इन्द्रिय दमन का पाठ सीख गया है जिस से सब इन्द्रियें शान्त हो चुकी हैं। जिन सांसारिक विषयों के फंसाने वाले लोभ में क्षणिक आनंद को लेता हुआ अज्ञान अंधकार में जा रहा था वह संसार के प्रत्येक परमाणु से अनन्त आनन्द को ग्रहण करता हुआ प्रभु

योग साधन ग्रन्थ माला का प्रथम पुष्प

॥ योग प्रेम वर्षा ॥

इस में योगी गुरु और ईश्वर की अभेदता, बलवान् पुत्रों को उत्पन्न करने वाले साधनों को भजनों द्वारा प्रगट किया है। मन का स्वरूप तथा योगी गुरु की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से शिष्य कैसे भगवान् के चरणारविन्द में गोपियों व मीरा के समान प्रेम को प्राप्त कर सकता है। प्रभु किन २ भावों के भूखे होते हैं, वह भाव तथा षट्चक्र भेद, अजपा, गायत्री से योग की फिलास्फी को भजनों द्वारा दिखाया गया है। इस पुस्तक के दो भजन साथ ही उदाहरण रूप में दिए जाते हैं।

मूल्य ॥)

—:-o-:—

परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य फिर संसार में नहीं आते। फिर ऐसे परम पद का अधिकारी कौन हो सकता है भगवान् गीता अ० १५ श्लो० ५ में बताते हैं—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा,
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

जिन्हों ने मान मोह और आसक्ति रूप सङ्ग दोषों को जीत लिया है। जिन की परमात्म-स्वरूप में ही निरन्तर स्थिति है, और जिन की कामनाएं भली प्रकार नष्ट होगई हैं। ऐसे मनुष्य सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानी जन अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं। जो हृदय अशान्त क्षेत्र बना हुआ था वह अब निकुञ्ज बन बन गया है प्रणव मंत्र की ध्वनि प्रभु की वंशी के स्वरों से निकल रही है, मन राधा

होकर श्याम की श्यामा बन गया है, कमला विमला होकर चपला की चपलता को शांत कर चुकी है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, क्षमा, धैर्य, दया के सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं सब विद्याओं के प्रकाश करने वाली प्रतिभा प्रभु के स्वरूप से विकसित हो रही है । अगम अलख निरंजन प्रभु के स्वरूप में तद्रूप होकर साधक साधन में साध्य रूप हो रहा है। ऐसी उच्च अवस्था को भगवान् गीता अ० ६ श्लोक २२ में कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

जिस की प्राप्ति पर अन्य कोई लाभ समता नहीं रखता, जिस में स्थित हुआ योगी कठिन दुःख में भी विचलित नहीं होता। धन्य हैं ऐसे उच्च आत्मा। जिन्हों ने सद्गुरु प्राप्त करके विश्व व्यापक प्रभु को माता पिता बन्धु बनाया है।

प्राण है मोहन वेग बुलाओ ॥
हो वचाना वो आन वचाले ॥ ३ ॥
मुख में श्याम मन में श्याम,
श्याम विना ना आए आराम,
मोहन ! जादू प्रेम के डाले ॥ ४ ॥
सुनियो पुकार मोरे मुरारी ॥
वियोग में वहे दासी तुम्हारी ॥
ना पत्थर दिल बनाले ॥ ५ ॥
सन्तों को देख मीरा नाचन लागी ॥
भूली दुनियां लौ हरि से लागी ॥
मोहन चोर न खुद को छिपाले ॥ ६ ॥
गुरु रैदास जी दर्श दिखाया,
मीरा को योग अमृत पिलाया,
मीरा मस्ती रंग रंगाले ॥ ७ ॥
मीरा कृष्ण पा प्यास बुझाई,
गुरु योगी आ हुए सहाई,
हुए प्रेम मुलख मतवाले ॥ ८ ॥

—:-o-:—

के ऐश्वर्य में ऐश्वर्य रूप होकर सच्चा लोभ करना सीख चुका है, जो संसार के विषयों में मोह से मोहित होकर बुद्धि को नष्ट कर अकर्मण्य बन चुका था। वह प्रभु के अनंत आनन्द स्वरूप में अपने को लय करके देह दुनियां की भास मिटा रहा है। जो सांसारिक विषयी ऐश्वर्य विद्या, धन मान-मद को प्राप्त होता हुआ आप जीव होकर शरीर को आत्मा मान करके देह अभिमानी बन प्रभु से दूर हो रहा था, अब वह सर्व शक्तिमान् के स्वरूप में शक्ति रूप होकर आगम्य आनंद सागर में लय हो रहा है। सारे देवता उस की स्तुति करते हैं। ऐसी स्थिति को भगवान् गीता अ० १५ श्लोक ६ में कहते हैं—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

जिस प्रकाशमय प्रभु को न सूर्य, न चन्द्रमा, न अग्नि प्रकाशित कर सकता है उस

मन का स्वरूप

ये मन बड़े तमाशे करता २।
अपने मालिक से न डरता ॥ टेक ॥

कभी शाह को रूप बनाए,
कभी मुकट सिर पर धरता ॥ १ ॥

वांग बन्दर चैन न पाए,
बिन पंखों के उड़ जाए,
कहीं प्यार ते कहीं लड़ता ॥ २ ॥

कभी वज़ीर राजा बन जाए,
पाप कमाए रिशवत खाए,
जा गधे की योनि पड़ता ॥ ३ ॥

माला हाथों में घुमाए,
वृत्ति विषयों की ओर जाए,
तिलक मस्तक में मन हरता ॥ ४ ॥

ब्रह्म जीव का सबक सुनाए,
कुत्ता भौंके ते डर जाए,
वहीं धोती को भर धरता ॥ ५ ॥

बन योगी योग कमाए,
हरिहर जां दृष्टि में आए,
प्यार शेरों से फिर करता ॥ ३ ॥
जब योग युक्त हो जाए,
ना फिर राज्य त्रिलोकी चाहे,
मुक्त औरों को फिर करता ॥ ७ ॥
हो सब सिद्धि से भरपूर,
चेतन बना आप हजूर,
मुलख देवों के मन हरता ॥ ८ ॥

—:-o-:—

डसी मैं तो श्याम भुजंगम काले ॥ टेक ॥
विष चढ़ गई प्रेम रस छायो ॥
रोम २ में श्याम समायो ॥
मेरी जान क्यों वैद्य निकाले ॥ १ ॥
मन तन मोरा सुध विसराए,
बाहर भीतर मोहन नज़र आए,
आ जल्दी कण्ठ लगा ले ॥ २ ॥
न दिखा औषधि खंजर चलाओ ॥

वह प्रभु धन्य हैं वह माता पिता धन्य हैं जिस ने जन्म देकर आनन्द शांति के स्वरूप को पैदा किया है। धन्य है वह गुरु जिन्होंने पारस रूप हो कर शिष्य-लोहे को स्वर्ण बनाया है। ऐसे शिष्य और सद्गुरु देव को कोटि २ बारंबार प्रणाम है।



* ओ३म *

देश का सौभाग्य

वशिष्ठ पातञ्जल की आत्माओ ! एक समय था जबकि भारत का ऋषि समाज योगविद्या के सूर्य का प्रकाश प्रत्येक भारतीय बच्चे के हृदय में हर एक शक्ति का संचार क्रियात्मक जीवन में कराता था।

अर्जुन का मत्स्य वेधन के समय केवल आंख का ही दृष्टि आना, बाण शय्या पर भीष्म जी का प्रसन्नता पूर्वक विश्राम लेना, तथा इच्छा से मृत्यु प्राप्त करना। यह मन की एकाग्रता से योग की शक्तियों को प्रगट करता है।

सर्व शक्तिमान् की अद्भुत शक्तियों को प्रकाश करने वाली दिव्य शक्तियों की प्यासी आत्माओ !

तन मन के रोगों को दूर कर सर्व प्रकार की शक्तियों को साधनों द्वारा ग्रहण करते हुए परमानन्द की प्राप्ति के निमित, उन शक्तियों का प्रकाश "योग साधन आश्रम ऋषिकेश" में अपने क्रियात्मक जीवन से करके देश को कृतार्थ कीजिए।

— ——

योग साधन आश्रम

ऋषिकेश के उद्देश्य

१—योग द्वारा (अधिकारी वर्ग की मानसिक स्थिति अनुसार) मन की एकाग्रता करा कर चरम ध्येय पर पहुंचाने का यत्न करना।

२—भारतीय हिन्दु जनता का योग के सरल साधनों द्वारा शारीरिक, मानसिक, सब असाध्य रोगों को दूर कराना जैसे यक्ष्मा हिस्टीरिया आदि।

३—प्रकृति की पराधीनता छुड़ा कर बाह्य, अन्तरीय प्रकृति पर शासन कराना।

४—तेजस्वी बलवती सन्तान बनाने व उत्पन्न करनेके लिये ईश्वरीय विभूतियों के आकर्षणीय साधन सिखाना।

५—ज्ञान विज्ञान की अन्तरीय गुह्य विद्याओं को योग शक्ति से अनुभव कराना।

६—इस विद्या के प्रसार निमित्त रोगी शरीरों को नीरोग करके (रोगी की इच्छा होने पर) योगविद्या के रहस्य व अनुभव से चिकित्सक बना कर प्रचार कराना।

७—कच्चा अन्न व वनस्पति खाकर दीर्घायु नीरोग बनाने का साधन कराना।

योग साधन आश्रम ऋषिकेश के नियम।

१—यहां किसी से किसी प्रकार की फीस नहीं ली

जायगी* ।

२—पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन कराएंगी ।

३—आश्रम के विद्यार्थी तीन प्रकार के होंगे—

क—जो सर्वदा आश्रम में रह कर अपने साधन को करते हुए आश्रम के साधकों की सेवा करेंगे ।

ख—जो एक मास व अधिक रहतेहुए स्वयं सीखकर अनुभव करके स्वदेश में जाकर दूसरों को सिखायेंगे ।

ग—जो स्वयं आप साधन कर लाभ उठायेंगे ।

४—प्रत्येक को अपना खर्च आप उठाना पड़ेगा ।

५—जो साधक शरीर नीरोगता के लिये आवें उन्हें कम से कम एक माह रहने का विचार करके आना चाहिये । परन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति निमित्त आना चाहते हैं उनको आश्रम में आने पर श्रीगुरु जी के विचार पर निर्भर होगा ।

६—दिनचर्या रात्रिचर्या प्रत्येक साधक को गुरुजी की आज्ञानुसार रखनी पड़ेगी ।

७—आश्रम के मेम्बर वही समझे जायेंगे जो आश्रम की साधन दीक्षा को फलीभूत होकर दिखायेंगे ।

८—आश्रम किसी साधक को स्थान ठहरने का देने के

---

* यदि कोई सज्जन आश्रम की व आश्रम के साधुओं की व अनाथ दरिद्र रोगियों की, तथा आश्रम के स्थान आदि बनवाने में सहायता करना चाहें तो श्री गुरु महाराज की सम्मति लेकर कर सकते हैं ।

लिये बाध्य न होगा, साधक अन्य धर्मशालाओं में ठहर सकेंगे।

९—१८ वर्ष से कम आयु वाले को संरक्षक के साथ आना पड़ेगा।

१०–स्त्रियों को स्व-सम्बन्धियों के साथ आना चाहिये। या वृद्ध स्त्री जो हितु संरक्षका हो उसके साथ आना चाहिये।

साधुओं के लिए नियम।

१—जिसके जन्म स्थान व गुरु स्थान का पूर्ण निश्चय होगा वह प्रवेश हो सकेगा।

२—जो भी उपासना व साधन दिया जायगा उसे नित्य नियम से करना होगा।

३—योग से अन्य कोई भी अध्ययन व श्रवण भी न करना होगा।

४—योग से अतिरिक्त किसी प्रकार का कोई भी सत्संग व सभागमन न करना होगा।

५—दिनचर्या, रात्रिचर्या, हमारी सम्मति अनुसार रखनी होगी।

६—भेष का अभिमान त्याग कर आना होगा।

७—भोजन तथा स्थान देने के लिये आश्रम बाध्य न होगा।

———